विनोबा का भूदान और आज का भारत

कन्हैया त्रिपाठी,

गांधी के सच्चे लोगों में विनोबा भावे एक ऐसा नाम है जो वास्तव में गांधी जी के कार्यों को भली प्रकार उनकी मृत्यु के बाद आगे ले गए। विनोबा ने अपने समय के उन मूल्यों और आध्यात्मिक पहलुओं पर विचार किया जो किसी गांधीवादी और सच्चे समाज सेवक के लिए मिसाल है। उनके जीवन का सबसे उत्तम आन्दोलनों में पहले गांधी के रचनात्मक कार्य प्रमुख थे लेकिन वह जय जगत के वास्तविक स्वरूप को पाने के लिए भूदान आन्दोलन की ओर बढ़े।

उन्होंने 18 अप्रिल, 1958 को गांधी की मृत्यु के 10 वर्श बाद इस आन्दोलन की भाुरुआत तेलंगाना क्षेत्र के पोचमपल्ली गांव से की। भूदान का अर्थ है–भूमिहीनों के भूमि दरिद्रता को दूर करने की एक पहल। इसके अन्तर्गत वह जमींदारों के पास पड़ी पर्याप्त भूमि को वितरण के लिए सबके बीच आगे आए। इस तरह का एक आख्यान भारतीय वाड.मय में विद्यमान है। लेकिन उस दौरान भूमिदान का कार्य बामनावतार के अनभिज्ञता में किया गया था लेकिन इस युग में विनोबा ने जो भूमिदान के लिए लोगों को तैयार किया और तेलंगााना में इसकी भाुरुआत की वह जानते बूझते लोगों के बीच हुआ।

उनके इस भूदान आन्दोलन को जनान्दोलन के रूप में हम सभी देखते हैं। जयप्रका ा नारायण ने इस आन्दोलन को भाोशणविहीन समाज की स्थापना की संज्ञा दी थी। जेपी का कहना था कि यह आन्दोलन न केवल नवीन जीवन पद्धति और सिद्धांत का द र्ान है बल्कि यह सामाजिक क्रांति का भी द्योतक है। वास्तव में हमारे यहां जमींदारों और जागीरदारों के बीच चल रहे संघर्श को इसके अलावा किसी अहिंसक पद्धति से निपटा नहीं जा सकता था। सबसे बड़ी बात यह है कि तेलंगाना में 51 दिनों में 12201 एकड़ जमीन दान में आयी, यह मामूली बात नहीं है। किसी भी आन्दोलन की यह नि चतरूप से बड़ी सफलता थी। यह वह दौर था जब भारत को मात्र 10 वर्श आजाद हुए हुआ था और जिनके पास जमींदारी थी वह खूब अघाए से थे। भारत की अधिकां ा जनता के पास भूमि का कोई अधिकार नहीं था। जिनके पास कुछ भी नहीं जमीन थी वह बेचारगी का जीवन जी रहे थे। स्वयं विनोबा ने कहा है कि गांधी जी के जाने के बाद अहिंसा के प्रवे ा के लिए मैं रास्ता ढूढता था। मेवात के मुसलमानों को बसाने का सवाल था उसी ख्याल से मैंने अपने हाथ में लिया। उसमें कुछ अनुभव मिला। उसी साहस से मैं तेलंगाना जाने का साहस किया था। वहां भाून यज्ञ के रूप में अहिंसा से मेरा साक्षात्कार हुआ।

तेलंगांना में जो भूमि मिली उसके पीछे वहां की पृश्ठीाूमि थी। उस पृश्ठीाूमि के अभाव में हिन्दुस्तान के भाायद दूसरे हिस्से में वह कल्पना चले या न चले, इस बारे में भांका हो सकती थी। उस भांका से निरसन के लिए दूसरे क्षेत्रों में इसे आजमाना जरूरी था। प्लानिंग कमी ान के सामने विचार रखने के लिए पं. नेहरू ने मुझे आमंत्रण दिया। उस निमित्त मैं पैल यात्रा पर निकल पड़ा और लिली तक करीब दो महीने में मुझे 18000 एकड़ जमीन मिली। मैंने देखा कि अहिंसा में प्रवे ा के लिए जनता उत्सुक है। विनोबा के यह भाब्द निःसंदेह एक प्रयोगवादी सन्त के भाब्द प्रतीत होते हैं जो कुछ नि चित उद्दे य को पूर्ण कर लेते हैं। वह अपने उस प्रयोग के बारे में खुद आ चर्य से देखते हुए जैसे कहते हैं–नतीजा यह हुआ कि सेवापुरी के सर्वोदय सममेलन में सारे हिन्दुस्तान के लोग मिलकर अगले दो साल में 25 लाख एकड़ जमीन प्राप्त करने का संकल्प लिया। 25 लाख एकड़ से हिन्स्तान के भूमिहीनो का मसला हल हो जाता है, ऐसा नहीं है।उसके लिए तो कम से कम 5 करोड़ एकड़ जमीन चाहिए, ऐसा उनका मानना था।

भारत में आज भी सीमांत किसान हैं और उनका जीवन मजदूरी आदि पर चलता है। आज संसाधन अधिक है। अवसर अधिक है। गांव नही ंतो भाहर ही उनके आजीविका का सहारा है लेकिन उस वक्त जब इतने दरवाजे नहीं थे, उस समय चुनौती थी। विनोबा जी ने उस चुनौती को स्वीकृत करते हुए आम जीवन के बारे में यह मुहिम छेड़ी थी जो बाद में बिहार, उत्तर प्रदे ा और भारत के विभिन्न कोने में भूदान से ग्रामदान तक अपना विस्तार पा ली।

यह वही गांव हैं जो भारत को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करते हैं। इतिहास की दृष्टि से भारत का गाँव और उसकी सामाजिक संरचना गाँव की जीवन्तता से थी। वैदिक साहित्य में 'सभा' व 'समिति' शब्द का ज़िक्र बार–बार मिलता है। पंचायतों में 'नरिष्ठा' जैसे सम्मानित पदों का ज़िक्र भी है। अथर्ववेद के एक श्लोक को मैं यहाँ उद्धृत करना चाहूँगा –

विदद् ते सभे नाम नरिष्ठा नाम वा असि।
ये ते के च सभासदस्ते में सवन्तु सवाचसः।।

अथर्ववेद 7/12/2

वैदिक काल के गाँवों के बारे में ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक गाँव स्वायत्त राज्य की भाँति कार्य करता था जो प्रायः आज भी कबीली संस्कृति में विद्यमान है। 'गणराज्यों' और 'संघों' का वर्णन तो रामायण में भी है। छोटे गणराज्यों से बने 'संघ' और उसमें 'पौर जनपद' जैसे पदों का विवेचन वाल्मीकि ने अपने संस्कृत महाकाव्य में किया है।

महाभारत कालीन समय का अवलोकन करें तो भारतीय भू–भाग पर पंचायतें बिल्कुल चर्चा में थीं। वह इसलिए क्योंकि रामायण कालीन 'पौर जनपद' वैदिक काल में ग्रामणी 'मुखिया' के रूप में मिलते हैं तो महाभारत काल में वही राज्य में सीधा हस्तक्षेप करने वालों में सुमार किए जाते हैं। इस प्रकार भारतीय प्राच्य इतिहास हमारे गाँव व गंवई सभ्यता के महत्वपूर्ण दस्तवेज़ से पटे पड़े हैं।

मौर्यकालीन कौटिल्य का अर्थशास्त्र हो या बौद्धकाल में संघों की कार्यप्रणाली इसमें ग्रामीण जीवनचर्या अथवा अर्थव्यवस्था की जो भी चर्चा की गई है उसमें केवल राज्य नहीं थे बल्कि ग्रामीण जनजीवन भी थे। मैगस्थनीज ने खुद जिन दस्तावेज़ों में अपने संस्करण लिखे हैं उसमें 'ग्राम शासन' की पर्याप्त चर्चा की है। फाह्यान और ह्वेन सांग ने भारतीय ग्राम्य जीवन के स्वावलम्बन व शांतिवादी प्रकृति को रेखांकित किया है। इन पर्यटकों की दृष्टि में तत्कालीन न्याय पंचायतों में न्याय व्यवस्था का अद्भुत दृश्य भारत में प्राप्त होते हैं।

मुस्लिम शासन काल में गाँवों की अस्मिता और पहचान उसी रूप में है जो गाँव के 'स्व' को बनाए रखें। 1812 में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद गाँवों के रिसोर्सेज चिन्हित किए जाने लगें लेकिन उनकी स्वायतत्ता बर्करार रही किंतु रिसोर्सेज की पहचान ने गाँवों को बाद में बहुत हानि पहुंचाई। लघु व कुटीर उद्योगों से डरी अंग्रेजी हुकूमत ने गाँवों को तहस–नहस करने का फैसला किया। भारी मात्रा में करों का बोझ तथा ग्रामीण संसाधनों की लूटपाट से गाँव तबाह हुए।

1857 की क्रांति के बाद का भारतीय ग्रामीण जीवन अंग्रेजों का कोपभाजक बना क्योंकि उस समय के गाँव में क्रांति की लहर इस प्रकार दौड़ी की अंग्रेज हतप्रभ रह गए। नव्य चेतना ने अंग्रेजी हुकूमत की सम्पूर्ण बगावत में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी इसमें गाँवों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। गाँव की संख्या भारत में सम्पूर्ण आबादी की 80 प्रतिशत से भी अधिक की आबादी थी। भारतीय लघु व कुटीर उद्योग तथा प्रतिरोध की संस्कृति का स्रोत गाँव था इसलिए गाँवों के प्रति क्रूरता अंग्रेजों का मुख्य पहलू बन गया। यह वह दौर था जब भारत अकाल ग्रस्त बार–बार हो रहा था। गजेटियर यह बताते हैं कि 1850 से 1900 तक भारत में लगभग 24 बार अकाल पड़े। अंग्रेज भारतीयों को राहत पहुँचाने की जगह कर–वसूली के लिए गाँव में ज्यादा पहुँचे। शाही रिपोर्ट (1909) से पूर्व लार्ड मेयों (1870), लार्ड रिपन प्रस्ताव (1882) तथा 1880 के अकाल

आयोग की रिपोर्ट में भारतीय गाँवों की दूर्दशा दिल दहला देने वाली घटनाओं का स्मरण कराती हैं। यह इतिहास हमारे गांव के तमाम कहानियों से पटा पड़ा है।

आजादी के बाद हमारा दायित्व कुछ और था जो समता मूलक समाज का सृजन करे लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण ही दौर कहा जाएगा कि उस दौर में भारत की अधिकां ा जमीन सवर्णों के पास थी। भारत के सवर्ण जातियों का इस पर आधिपत्य था। दलित, भाोशित और वंचित इनसे वंचित थे। वे अपने मालिक या अपने जमींदार के कृपा पर अपना और अपने परिवार का गुजारा करते थे। यह किसी आजाद भारत के दस वर्शीय इतिहास के बाद के समय था जो कलंकपूर्ण ही समझा जाएगा। इस सिलसिले में विनोबा की भूदान आन्दोलन की ओर गयी दृश्टि निःसंदेह एक ऐसे जन आन्दोलन का पर्याय है।

गाँधी ने अपने **अंतिम वसीयतनामे** में कहा था, "शहरों–कस्बों से भिन्न उनके सात लाख गाँवों की दृष्टि से हिंदुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आज़ादी हासिल करना अभी बाकी है।" विनोबा ने सोचा **रस्किन** के **'अन टू दिस् लॉस्ट'** व **गाँधी** का **सर्वोदयवाद** गाँवों के समस्तजन के लिए अपरिहार्य है। उस अवधारणा का प्रासार्य पूरी गाँव की देसज सभ्यता में जब तक नहीं होता तब तक भारतीय ग्राम्य संरचना, उसका संस्कृतीकरण और मानवीकरण नहीं हो सकता और इस अभाव में स्थानिकता, विकास व पर्यावरण, सबको हानि पहुँचेगी। हमारी प्राचीन सभ्यता से अब तक के गाँव की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक उन्नति जो कुछ हुई, वह उसके मूल सौन्दर्य की वहज से रही, इस कटु सत्य को स्वीकारते हुए हमें उन संस्कृतियों व सभ्यताओं से बचने की जरूरत है जो हमारे गाँव को जीवन्त नहीं देखना चाहते। हमें ऐसे मार्ग प्रशस्त करने हैं, जिससे गाँव का मौलिक व सार्थक सम्मान बढ़ सके, यही समय की अपेक्षा भी है। विनोबा के भूदान आन्दोलन के पीछे यह सपना था।

आज इक्कीसवीं सदी का एक दशक बीत चुका है। आज विनोबा हमारे बीच नहीं हैं। सरकारी स्तर पर भारत में गाँवों के लिए जो योजनाएं चलायी जा रही हैं उसका असर कई कारणों से गाँववासियों को नहीं मिल पा रहा है। इसका एक प्रमुख कारण भ्रष्टाचार तथा अपने उत्तरदायित्वों से नेतृत्वकर्ताओं का भटकाव भी है। उत्तरदायित्वों का भटकाव इस तरह कि अब विनोबा नहीं हैं तो उनके कार्य को आगे ले जाने का साहस जो टूटा है वह किसी भी जन–आन्दोलन की मृत्यु का सूचक है।

पिछले 100 वर्षों में भी हमारे गाँव हमारी अस्मिता को बनाए रखने में संबल का काम किए हैं, लेकिन गाँवों से हमारा मोह टूटता गया। ऐसी भ्रांति पैदा हुई कि गाँव हमारे काम के नहीं रह गए। शहरों की तरफ भागती आबादी को अब गाँव अच्छे नहीं लग रहे हैं। उन्हें शहर लुभा रहे हैं। हालांकि मल्टीनेशनल्स कंपनियों की निगाह में गाँव है शहरों की अपेक्षा, क्योंकि शहर में उन्होंने अपना जादू चला रखा है अब गाँव को बदलने की वकालत वे शुरू किए हैं। उस समय तो भूदान की बात की जाती थी अब जो व्यवस्था है वह ग्रामदान किसी मल्टीने ानल्स को करना चाहती है जो गांव को बदलेगा। वहां बाजार ढूंढ़कर, वहां अपने उत्पाद बेचकर और अपनी धाक जमाकर उन्हें हर तरह से कंगाल करेगा।

बदलते दौर की इस लूट को हम किस प्रकार से देखें। सवर्ण आज जिस जमीन पर काबिज हैं वह अब आम लोगों की जमीन नहीं बनेगी। जो आदिवासी समाज की जमीन है। जो गांव के किसी छोटे किसान की जमीन है उसको अधिग्रहण करने के लिए सरकार के पास एक्ट बनाए गए हैं। पि चम बंगाल के नए भूमिग्रहण आन्दोलन को उस श्रेणी में रखकर हम देखें तो जो पि चम बंगाल में पूंजीवादियों के लिए भूमि अधिग्रहण करके दी जा रही थी उसके लिए प्रतिरोध हुआ। भूदान का मायने बदल गया। यह दान लेने की पात्रता किसमें है, यह तो सरकारें तय करेंगी। यह विनोबा के किसी भूदान आन्दोलन का अपमान है। और एक क्रूर नग्न नाच है।

विनोबा का तो सपना था गांधी द्वारा देखा गया राम राज्य का सपना। वह जय जगत का सपना था। जय जगत में जनता–जनार्दन आते हैं। उसमें न तो ये मल्टीने ानल्स आते हैं और न ही पूंजीवादी लोग जो भूमि को गांव के लिए ही कुछ वक्त बाद अभि ाप बनाकर छोड़ देने वाले है। यह लोग न ट्रस्टी ाप के पोशक हैं और न ही किसी को अपने एक भी पाई का उपयोग चाहते हैं। लुटेरों के लिए दान भाब्द का प्रयोग पाप है। उनके भूदान को मैथिली ारण गुप्त ने निम्न प्रकार प्रकट किया है–

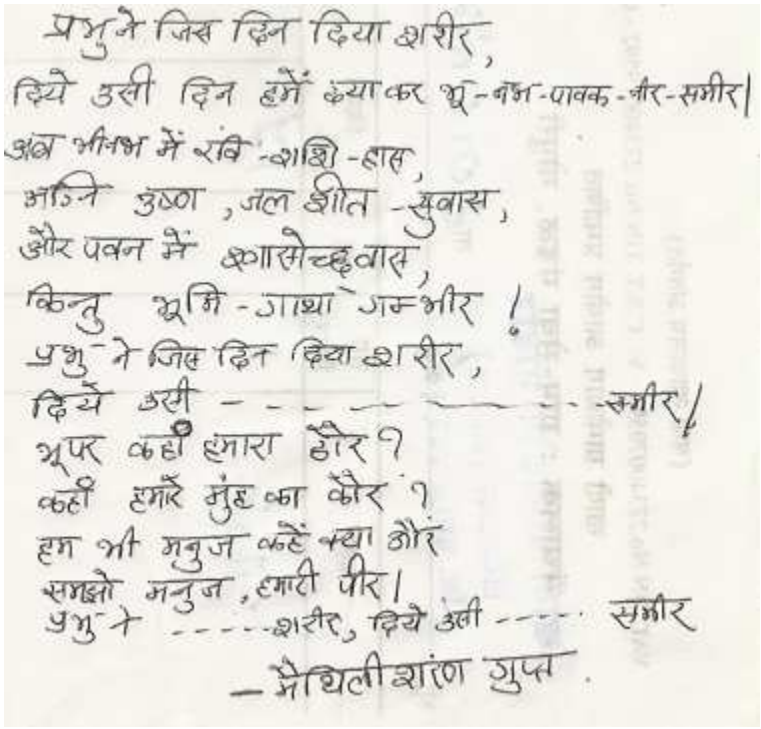
प्रभु ने जिस दिन दिया शरीर,
दिये उसी दिन हमें कृपाकर भू-नभ-पावक-नीर-समीर।
अब भीनभ में रवि-शशि-हार,
अग्नि उष्ण, जल शीत-सुवास,
और पवन में श्वासोच्छ्वास,
किन्तु भूमि-गाथा गम्भीर!
प्रभु ने जिस दिन दिया शरीर,
दिये उसी ---------- समीर।
ऊपर कहाँ हमारा ठौर?
कहाँ हमारे मुँह का कौर?
हम भी मनुज कहें क्या और
समझो मनुज, हमारी पीर।
प्रभु ने -----शरीर, दिये उसी ----- समीर
–मैथिलीशरण गुप्त

भूमण्डलीकरण के इतिहासकार आज भले गाँधी को भी देहती–बुद्धूपने की सोच की संज्ञा दें और नवपूंजीवादी साम्राज्यवादी व बर्चस्ववादी बाजारू संस्कृति को सही ठहराएं, आधुनिक औद्योगीकरण तथा तकनीकी विकास को जायज बताएं, साथ ही शहरीकरण को मनुष्य को जीवन्त करने का माध्यम बताएं लेकिन इसमें साधन व साध्य की सही समझ का अभाव है। जिस साधन से साध्य हासिल करने की कोशिश है वह साधन काम का नहीं होगा क्योंकि साध्य जो है उस ओर हमारा ध्यान कम आकर्षित हो रहा है। इस प्रकार हमारी जो चंचलता व व्यग्रता है वह हमारे समष्टि के लिए ठीक नहीं है। वैकल्पिक तत्वों की खोज गाँवों की मुक्ति के नए आयामों का द्वार खोलेंगे किंतु वह अपने आप नहीं होगा बल्कि उसके लिए हमारा संकल्प प्रतिबद्धता, विश्वास और निष्ठा ठीक होनी चाहिए। भारतीय समाजवादी विचारकों यहाँ तक कि **गाँधी** की हम बात करें या **सम्पूर्णानन्द** की बात करें उन्हें गाँवों की देसज–सभ्यता व देहाती संस्कृति के अपने महत्व दिखे गाँधी ने अपनी पुस्तक **'हिन्द स्वराज'** में इस पर खुलकर लिखा भी है। वह वही बात करते हैं जो विनोबा ने उनकी उपस्थिति में आगे बढ़ाया लेकिन अब आज जो दौर आ गया है उसमें संघर्श और संवाद ही खत्म होते जा रहे हैं।

उसकी एक वजह यह लगती है कि लोगों का आध्यत्मिक भटकाव अब कुछ ज्यादा ही हो गया है। लोग सबै भूमि गोपाल की जगह लूट और चोरी पर उतर आए हैं। जनान्दोलनों को कुचलकर उन साम्राज्वादी भाक्तियों को पोसने का यह कुचक्र कब तक चलेगा यह कहा नहीं जा सकता। बिहार के अब भी ज्यादातर भूमि के मालिकी पर सवाल खड़े हो रहे हैं। यह सवाल और उसके उत्तर की खोजबीन अब एक सतत चलने वाली चुनौती बनती जा रही है। आजाद भारत का सपना और गांधी तथा उनके प्रथम ि ाश्य विनोबा का सपना यह कदापि नहीं था जो भूदान के जरिए या विकेन्द्रकृत ग्रामीण सभ्यता के लिए सपना था। ऐसे में प्र न है कि जो आम आदमी के

निवाले से जुड़े प्र न हैं और आम जिन्दगी के प्रतिश्ठा व गरिमा से जुड़े प्र न हैं वह कैसे संपृक्त किए जा सकेंगे।

.....